



संरक्षण कृषि है सतत विकास का विकल्प

सृष्टि बिलैया*, निलेश शर्मा**, अंकिता साहू*** और रविन्द्र सोलंकी***

॥ संरक्षण कृषि में उपयोग हो रहा शब्द 'संरक्षण' स्वयं ही इस खेती की विशेषता को दर्शाता है। संरक्षण कृषि के जरिए मृदा की नमी और गुणवत्ता के साथ-साथ, मृदा में पाए जाने वाले उपयोगी सूक्ष्मजीव आदि का संरक्षण होता है। ये प्रत्यक्ष रूप से फसल की उपज और गुणवत्ता में वृद्धि के लिए सहायक होते हैं। इस पद्धति का मुख्य उद्देश्य पारंपरिक खेती से हो रहे नकारात्मक प्रभावों जैसे-मृदा अपरदन, मृदा की भौतिक अवनति, जैविक पदार्थ क्षरण, ईंधन खपत आदि को कम करना है। ॥

हरित क्रांति के पश्चात, फसलों की उपज बढ़ाने के लिए, भारत में अधिक उर्वरकों और कीटनाशकों का उपयोग किया जाने लगा। इसके फलस्वरूप अनाजों की गुणवत्ता और मृदा की उत्पादकता में तेजी से गिरावट आई। इसके साथ ही, भूमि क्षरण, मृदा में कटाव, पोषक तत्वों का दोहन, मृदा में कार्बनिक पदार्थों की कमी, मृदा की उत्पादन शक्ति में कमी, जैव विविधता में कमी, अनियमित भूजल स्तर, जलवायु परिवर्तन, आदि जैसी गंभीर पर्यावरणीय समस्याएं सामने आईं। ये आर्थिक नुकसान पहुंचाने के साथ-साथ हमारे पारिस्थितिकी तंत्र एवं खाद्य सुरक्षा के लिए एक खतरा बनी। इस स्थिति में हमें ऐसी

* एवं ***अतिथि प्राध्यापक तथा **पी.एचडी. शोधकर्ता; आर.वी.एस.के.वी.वी., ग्वालियर (मध्य प्रदेश)

पद्धति की ओर ध्यान देना चाहिए, जिससे प्राकृतिक संसाधनों का इष्टतम उपयोग होने के

संरक्षण खेती

संरक्षण खेती मृदा की ऊपरी व निचली सतह के अन्दर प्राकृतिक जैविक क्रियाओं को बढ़ाने पर आधारित है। यह एक पर्यावरण हितैषी सतत प्रबंधन प्रणाली है, जिसके मुख्यतः तीन सिद्धांत हैं; न्यूनतम मृदा की जुताई, स्थायी जैविक मृदा आवरण एवं विविध फसलचक्रण। इसके अलावा इस कृषि तकनीक में खेतों में पराली जलाना पूर्णतः निषेध होता है। इससे जहां एक ओर मृदा में उपस्थित सूक्ष्मजीवों एवं जैविक पदार्थ की मात्रा में वृद्धि होती है, वहीं दूसरी ओर यह पर्यावरण को प्रदूषित होने से भी बचाती है।

साथ मृदा का स्वास्थ्य बना रहे। अतः संरक्षण कृषि एक उच्च विकल्प है, जिससे मृदा की उर्वराशक्ति एवं उत्पादन क्षमता में बढ़ोतरी होने के साथ, लागत में कमी आती है।

इस तकनीक में एक महत्वपूर्ण उपकरण का उपयोग किया जाता है, जिसे 'हैप्पी सीडर' कहते हैं। यह एक ऐसी मशीन है, जो कि खेत में उपस्थित पूर्व की फसल के अवशेषों के साथ ही बुआई करने में सक्षम होती है। यह अवशेष, फसल के लिए पलवार का काम करता है।

संरक्षण खेती प्रणाली में उपलब्ध संसाधनों का इष्टतम उपयोग एवं संरक्षण करते हुए, किसी स्थान की भौतिक, सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति के अनुसार टिकाऊ फसल उत्पादन लेने के लिए नये-नये तरीके अपनाये जाते हैं।

विधि

पारंपरिक रूप से यह सोचा जाता है कि जितने अच्छे तरीके से खेतों को जोता जाएगा, फसल उतनी ही अच्छी होगी। संरक्षण कृषि में, पिछली बार की फसल को काटने के पश्चात जमीन को वैसे का वैसे ही छोड़ दिया जाता है। इस प्रणाली में बुआई, सीड-ड्रिल या 'हैप्पी सीडर' की मदद से की जाती है। इसमें खेतों में छेद करके बीजों को एक निश्चित गहराई में बुआई की जाती है। इन दोनों ही उपकरणों द्वारा बीजों को एक निश्चित गहराई में बोने के साथ-साथ उपयुक्त मात्रा में उर्वरक भी डाले जाते हैं। 'हैप्पी सीडर' के माध्यम से एक फसल की कटाई के पश्चात दूसरी फसल की सीधे खेत के अवशेषों के साथ ही बुआई की जा सकती है। इस मशीन से बुआई करने पर सिंचाई में पानी की बचत होती है। इसमें पराली, पलवार का काम करती है और मृदा में नमी बनाए रखने में मदद करती है एवं इससे पराली को जलाने की आवश्यकता नहीं पड़ती। उचित गहराई में बीज बोने और उनके आसपास मौजूद छोटी-छोटी नालियों की वजह से पानी अच्छी तरह से उन तक पहुंच पाता है। इससे पानी की बर्बादी तो कम होती ही



स्थायी जैविक मृदा आवरण (मल्लिचंग)

है, साथ ही, पैदावार में भी अच्छा खासा इजाफा हो सकता है।

लाभ

परंपरागत खेती में मृदा की जुताई के साथ-साथ खेतों में आग लगाई जाती है। इससे न सिर्फ वातावरण प्रदूषित होता है, अपितु मृदा में मौजूद उपयोगी जीव और तत्व भी नष्ट हो जाते हैं। भूपरिष्करण यंत्र जैसे-हैरो, कल्टीवेटर, रोटोवेटर इत्यादि मृदा के भौतिक, रासायनिक एवं जैविक गुणों में परिवर्तन लाते हैं, जिससे मृदा क्षरण को बढ़ावा मिलता है। मृदा में कार्बनिक पदार्थों की कमी हो जाती है और मृदा की उर्वराशक्ति एवं उत्पादन क्षमता में कमी आ जाती है। संरक्षण खेती में मृदा की न्यूनतम जुताई को अपनाकर मृदा में कार्बनिक पदार्थों की मात्रा में वृद्धि हो सकती है। इससे फसलों को पोषक तत्व संरक्षण और मृदा संरचना के स्थिरीकरण में मदद मिलती है एवं लाभदायक जीवाणुओं और केंचुओं की संख्या में वृद्धि होती है। इसके साथ ही मृदा की न्यूनतम जुताई से ईंधन एवं मानव श्रम दोनों में बचत होती है।

संरक्षण खेती में मृदा का स्वास्थ्य तथा उसकी पैदावार बनाए रखने के लिए यह महत्वपूर्ण है कि इसकी सतह पर फसल अवशेषों का पर्याप्त आवरण हो। मृदा में फसल अवशेष का स्थायी आवरण होने के कारण उसमें उपस्थित सूक्ष्मजीवों की जैविक गतिविधियां बढ़ जाती हैं। इससे मृदा में कार्बनिक पदार्थों की वृद्धि होती है एवं मृदा का तापमान भी नियंत्रित रहता है।

मृदा सतह पर उपस्थित फसल अवशेष मृदा सतह पर बहने वाले पानी और हवा की गति को कम कर देते हैं। इससे मृदा के महीन कणों का ऊपरी सतह से विस्थापन एवं मृदा कार्बनिक पदार्थों का क्षरण बहुत कम हो जाता है। फसल अवशेष मृदा सतह से पानी का वाष्पीकरण कम करने में सहायक होते हैं, जिससे अधिक समय के लिए मृदा में नमी बनी रहती है।

इसके साथ ही विविध फसलचक्रण अपनाकर जहां एक ओर फसल उत्पादन में वृद्धि होती है, वहीं दूसरी ओर फसलचक्रण में दलहनी फसल लगाने से इन फसलों में नोड्यूलस होते हैं। ये वायुमंडल की नाइट्रोजन का मृदा में स्थिरीकरण करते हैं। इससे मृदा उर्वरता के साथ-साथ मृदा में नाइट्रोजन की मात्रा में वृद्धि होती है, जो अगली फसल के लिए फायदेमंद हो सकती है। संरक्षण कृषि से उपयोगी जीव और तत्वों के संरक्षण के साथ-साथ, खरपतवारों के आक्रमण, मृदा अपरदन और कार्बनडाइऑक्साइड के उत्सर्जन एवं कृषि की लागत में भी कमी होती है। यह पर्यावरण को सुरक्षित रखने का कार्य करती है। विभिन्न शोधों में यह पाया गया है कि इस प्रणाली में उपकरणों से जुताई न करने के कारण 30-40 प्रतिशत ईंधन की बचत एवं श्रम की भी कम उपयोगिता के चलते लागत में भी बचत होती है। इसके द्वारा समयानुसार कृषि गतिविधियों के कारण 45-48 प्रतिशत लागत में बचत की गई। इस प्रकार उपज में और आमदनी में 30-40 प्रतिशत की वृद्धि पाई गई है।

महत्व

पर्यावरण की सुरक्षा के साथ-साथ सतत विकास एवं पौष्टिक आहार और उपज में वृद्धि चाहिए, तो एक ऐसी प्रणाली अपनानी होगी, जिससे मृदा के साथ-साथ मानव जाति भी संरक्षित रहे। अतः संरक्षण कृषि एक उच्च विकल्प है, जिसमें फसल प्रणालियों का प्रबंधन उपलब्ध प्राकृतिक संसाधनों एवं प्रबंधन तकनीकियों के अनुसार होता है। इसके साथ ही यह विधा मृदा के भौतिक गुणों जैसे-मृदा संरचना, जलधारण क्षमता, मृदा भार घनत्व, उर्वरक उपयोग क्षमता, मृदा समुच्चय, मृदा पारगम्यता दर, पोषक तत्व प्रतिधारण (रिटेंशन) को फसल के जड़िय क्षेत्र (राइजोस्फीयर) में बढ़ाने में मुख्य भूमिका निभाती है। अगर हम भारत में इस प्रणाली को सुचारू रूप से अपनाएं, तो निश्चित रूप से फसल की उत्पादकता में वृद्धि एवं संसाधनों के इष्टतम उपयोग के साथ मृदा को भी संरक्षित कर सकते हैं।